

फ़ैल न करने की नीति की समाप्ति बयानबाजी बनाम वास्तविकता

दिव्या दुबे एवं मधु कुशवाहा

विभिन्न स्वतन्त्र एजेंसियों के सर्वेक्षणों में स्कूली शिक्षा में अधिगम स्तर की गिरावट का चिन्ताजनक चेहरा उभारा गया है। इससे राज्यों को इस बात का अवसर मिला है कि वे शिक्षा अधिकार अधिनियम में मौजूद फ़ैल न करने की नीति को जिम्मेदार मानते हुए इसमें संशोधन की सिफारिश कर सकें। इस मसले पर आम समाज की एकजुटता और उनकी राय को भी इसमें शामिल किया जा सकता है, जो पहले ही 'सबके लिए शिक्षा' के प्रति उदार नहीं है। दिव्या और मधु का यह आलेख इस बात की ओर स्पष्ट इशारा करता है कि अधिगम स्तर में गिरावट के दूसरे महत्वपूर्ण कारणों पर गौर किए बिना सिर्फ़ फ़ैल न करने की नीति को कोसना अतार्किक और एकतरफ़ा कार्यवाही होगी। सं.

पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं की जड़ औपनिवेशिक शासन के दौरान तब और भी गहरी हुई जब उच्च जातीय, वर्गीय समूहों को औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा पाने का अवसर मिला, और एक बड़े जनसमूह को शिक्षा के अवसर से वंचित रखा गया। तत्कालीन भारतीय समाज सुधारकों ने, जो भारत में पहले से ही व्याप्त सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिए प्रयासरत थे, इस नई असमानता की व्यवस्था के प्रति चिन्ता व्यक्त की और इसे दूर करने के लिए जनसमूह के लिए भी समान शैक्षिक अवसरों की आवश्यकता महसूस की। इसके लिए ज्योतिबा फुले (1882), गोखले (1911) और गाँधी (1937) ने सरकार द्वारा सभी बच्चों को अनिवार्य और निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा देने की माँग की। साथ ही गाँधीजी ने औपनिवेशिक शिक्षा के स्थान पर नई राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की भी माँग की, क्योंकि औपनिवेशिक शिक्षा जन समूह की आवश्यकता के अनुसार न होकर अभिजात्य

वर्गों के हितों की पूर्ति करने वाली थी, जो कि वंचित वर्गों की स्थिति में किसी भी प्रकार का सुधार लाने में अक्षम थी। लेकिन यह माँगें तत्कालीन औपनिवेशिक राजनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप नहीं थीं, अतः इन्हें नहीं माना गया। इन माँगों का विरोध करने में भारतीयों का वह उच्च वर्गीय समूह भी शामिल था, जो उस समय शिक्षा से लाभान्वित हो रहा था और तत्कालीन शासन व्यवस्था में जिन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस प्रकार, शैक्षिक अवसरों की समानता की यह माँगें तत्कालीन राजनीतिक हितों की भेंट चढ़ गईं।

इसके कुछ समय के बाद भारत को आज़ादी मिली और भारत एक संप्रभु लोकतान्त्रिक गणराज्य घोषित हुआ, जिसने सामाजिक न्याय व समानता पर आधारित समाज की स्थापना की प्रतिबद्धता ज़ाहिर की। अतः यह उम्मीद की गई कि राज्य अब तक उच्च वर्गों के हितों का पोषण करती आई शिक्षा की परिवर्तनकारी भूमिका सुनिश्चित करेगा, जो वंचित वर्गों की ऊर्ध्वगामी गतिशीलता में सहायक हो, और ऐसी शिक्षा तक सबकी समान रूप से पहुँच सुनिश्चित कराएगा।

इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण कार्य था अनिवार्य रूप से प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वजनीकरण किया जाना और जनसमूह की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाना। लेकिन तत्कालीन शासन व्यवस्था ने, जिसमें उच्च वर्गीय जातीय समूहों का संकेन्द्रण था, सभी शैक्षिक प्रयासों में उच्च वर्गीय हितों को प्राथमिकता दी और वंचित वर्ग के लिए आवश्यक शैक्षिक प्रयासों की उपेक्षा की गई या उन्हें बेहद सतही ढंग से अंजाम दिया गया।

प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वजनीकरण

अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की नितान्त आवश्यकता आज़ादी के पचास वर्ष पहले से ही महसूस की जाने लगी थी। स्वतन्त्र भारत के संविधान में इस लक्ष्य को ‘राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त’ में जगह दी गई। नीति निर्देशक तत्त्वों को लागू करना राज्य के लिए बाध्यकारी नहीं था, बल्कि उसकी सदिच्छा पर निर्भर था। हालाँकि इसको पूरा करने के लिए दस वर्ष का लक्ष्य रखा गया था, लेकिन इसे तय समय के अन्दर पूरा नहीं किया जा सका।

इसके अलावा, जनसमूह की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रारम्भिक शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली विकसित करने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा पर जल्द से जल्द व्यवस्थित रूप से विचार किया जाना आवश्यक था। लेकिन स्वतन्त्र भारत में जब शिक्षा के बारे में व्यवस्थित ढंग से विचार करने के लिए शिक्षा आयोगों का गठन हुआ तो, पहले दो आयोगों— राधाकृष्णन आयोग (1948-49) और मुदालियर आयोग (1952-53) ने क्रमशः उच्च शिक्षा और माध्यमिक शिक्षा पर

विचार किया, जो कि तत्कालीन उच्च मध्यम वर्ग की प्राथमिकता थी। वंचित वर्गों की प्राथमिकता, प्रारम्भिक शिक्षा, लम्बे समय तक उपेक्षित रही, जबकि इस पर तत्काल ध्यान दिया जाना ज़रूरी था।

आज़ादी के 17 साल बाद पहली बार कोठारी आयोग ने प्रारम्भिक शिक्षा की स्थिति की जाँच की। उन्होंने पाया कि नामांकन दर बढ़ने के बावजूद प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका था, जिसकी मुख्य वजह अपव्यय और अवरोधन की समस्या थी। इस समस्या के शिकार सबसे ज्यादा वंचित वर्ग के विद्यार्थी ही थे। प्रारम्भिक शिक्षा में अपव्यय से तात्पर्य था— ‘विद्यार्थियों का स्कूल में दाखिला लेना लेकिन आठवीं तक की शिक्षा पूरी करने से पहले ही विद्यालय छोड़ देना’। स्कूल छोड़ने की मुख्य वजह अवरोधन थी, जिसमें विद्यार्थियों को फ़ेल किए जाने की वजह से वे एक ही कक्षा में एक साल से अधिक रोक दिए जाते थे, या फिर फ़ेल होने की वजह से वे बीच में ही विद्यालय छोड़ देते थे।

आज़ादी के 17 साल बाद पहली बार कोठारी आयोग ने प्रारम्भिक शिक्षा की स्थिति की जाँच की। उन्होंने पाया कि नामांकन दर बढ़ने के बावजूद प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सका था, जिसकी मुख्य वजह अपव्यय और अवरोधन की समस्या थी। इस समस्या के शिकार सबसे ज्यादा वंचित वर्ग के विद्यार्थी ही थे।

कोठारी आयोग ने अपनी रिपोर्ट में अपव्यय और अवरोधन के सन्दर्भ में कहा, “यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपव्यय और अवरोधन, बुखार और सिरदर्द की तरह अपने आप में कोई बीमारी नहीं हैं बल्कि यह व्यवस्था में मौजूद अन्य बीमारियों के लक्षण हैं। इनमें मुख्य हैं— जीवन और शिक्षा के बीच उपयुक्त सम्बन्ध का न होना और स्कूल द्वारा विद्यार्थियों को आकर्षित करने और रोके रखने की क्षमता का अभाव।” इसके लिए आयोग ने जिन समस्याओं को ज़िम्मेदार माना, वे थीं : रोचक पाठ्यक्रम का अभाव; विद्यालय में शिक्षकों-शिक्षिकाओं का अभाव—

लिहाजा पाठ्यक्रम का पूरा न हो पाना; प्रशिक्षित शिक्षिकाओं-शिक्षकों का अभाव; उपयुक्त शैक्षिक सामग्रियों का अभाव; दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली व विद्यालय भवन का अभाव। आयोग ने इन्हें शीघ्रातिशीघ्र दूर किए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया। इन सुधारों को सरकार द्वारा तुरन्त लागू किया जाना जरूरी था क्योंकि यह समस्याएँ मुख्य रूप से सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले वंचित वर्ग के विद्यार्थियों को ही प्रभावित कर रही थीं। लेकिन यह स्पष्ट होता है कि सरकार ने इस दिशा में कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया क्योंकि 1986 तक बनी सभी शिक्षा नीतियों में इस समस्या पर ध्यान दिए जाने की बात बार-बार दोहरानी पड़ी, पर समस्या ज्यों की त्यों बनी रही।

नब्बे के दशक में, जब अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं के दबाव की वजह से सरकार के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का कार्य जल्दी पूरा किया जाना आवश्यक हो गया, तो सरकार ने इसमें आने वाली बड़ी चुनौतियों— अपव्यय व अवरोधन— से निपटने के लिए व्यवस्थागत सुधारों की बजाय सतही प्रयास ही किए। जो बच्चे (जिनमें मुख्य रूप से निम्न जाति, वर्ग, जनजातीय बच्चे, और विशेष तौर से लड़कियाँ थीं) विद्यालय से बाहर हो गए थे, उनके लिए निम्न स्तर की गुणवत्ता वाली अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की और यहाँ तक कि साक्षरता कार्यक्रमों को भी प्रारम्भिक शिक्षा का पर्याय मान लिया। इस प्रकार, सरकार द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के नाम पर खुद को केवल संख्यात्मक प्रसार के संकीर्ण लक्ष्य तक सीमित कर लेने से वंचित व कमजोर वर्ग के बच्चे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। इन बच्चों के सामने सरकार ने दो ही विकल्प छोड़े थे— या तो वे विद्यालय

सरकार द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के नाम पर खुद को केवल संख्यात्मक प्रसार के संकीर्ण लक्ष्य तक सीमित कर लेने से वंचित व कमजोर वर्ग के बच्चे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। इन बच्चों के सामने सरकार ने दो ही विकल्प छोड़े थे— या तो वे विद्यालय से बाहर हो जाते थे या निम्न गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त करते थे।

से बाहर हो जाते थे या निम्न गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त करते थे। आजादी के 60 साल बाद भी असमानता की वह व्यवस्था बनी रही, जिसमें वंचित वर्ग के विद्यार्थियों को गुणवत्ता वाली औपचारिक शिक्षा पाने की सम्भावना बहुत कम थी।

सन् 1993 में उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्रप्रदेश मामले में सुप्रीम कोर्ट ने 14 साल तक के बच्चों की निःशुल्क शिक्षा को उनका मूल अधिकार बताया, जो मौजूदा प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव लाने वाला सिद्ध हुआ। इस फैसले के आधार पर वर्ष 2002 में संविधान में संशोधन करके छह से चौदह वर्ष

तक के बच्चों की अनिवार्य एवं निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा को उनका मूल अधिकार घोषित किया गया। इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रावधान वाला शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 अस्तित्व में आया, जिसका अनुपालन करने के लिए राज्य अब वैधानिक रूप से बाध्य था। यह अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 से पूरे भारत में (जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर) लागू हुआ। शिक्षा का अधिकार अधिनियम के लागू होने को प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में किए गए अब तक के प्रयासों

में सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। यह इस अर्थ में विशिष्ट है कि इसमें वंचित और कमजोर वर्ग के बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा के अधिकार को प्रभावी ढंग से सुनिश्चित करने का प्रावधान किया गया है और उन समस्याओं को दूर करने के प्रयास भी इसमें शामिल हैं, जिनकी वजह से अब तक यह कार्य पूरा नहीं किया जा सका था।

फ़ेल न करने की नीति और निम्न अधिगम स्तर

शिक्षा के सार्वजनीकरण की दिशा में अभी

तक किए गए प्रयासों से वंचित वर्गों के बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित नहीं की जा सकी थी। इसकी मुख्य वजह सरकार द्वारा गुणवत्ता के ऊपर केवल संख्यात्मक प्रसार को दी गई तरज़ीह थी। इस समस्या को देखते हुए इस अधिनियम में विद्यार्थियों का नामांकन करने, विद्यालय में उनकी उपस्थिति सुनिश्चित कराने के साथ आठवीं तक की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पूरी कराने को समेकित व अनिवार्य रूप से शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत रखा गया है।

इसके अलावा प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में अपव्यय और अवरोधन मुख्य समस्याएँ रही हैं। यह स्पष्ट है कि अवरोधन व अपव्यय व्यवस्था जनित समस्याएँ हैं, जिनका सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव वंचित वर्ग के विद्यार्थियों पर पड़ता है। विद्यार्थियों को इस व्यवस्था जनित समस्या के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2010 के अध्याय 4 के अनुच्छेद 16 को शामिल किया गया है। अनुच्छेद 16 में आठवीं तक किसी भी बच्चे को फ़ेल करने या विद्यालय से निकाले जाने को पूर्णतः प्रतिबन्धित किया गया है।

इस नीति को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियम में उचित शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, कार्यदिवसों की निश्चित संख्या, उचित योग्यता वाले शिक्षकों की नियुक्ति, सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रणाली का प्रयोग एवं इस हेतु सेवारत शिक्षकों के क्षमतावर्धन सहित सभी शिक्षकों का उपयुक्त प्रशिक्षण जैसे कई प्रावधान किए गए हैं। इन प्रावधानों की अनुपालना सुनिश्चित करने का दायित्व राज्य व शिक्षकों पर है। इस प्रकार, अधिनियम में सभी विद्यार्थियों के प्रारम्भिक शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के व्यापक

व स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं। इसीलिए यह अधिनियम काफ़ी उम्मीदें जगाता है कि इसका प्रभावी क्रियान्वयन शिक्षा की परिवर्तनकारी भूमिका सुनिश्चित कर पाएगा।

लेकिन, शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू होने के बाद से ही आलोचना के केन्द्र में है। इसकी आलोचना 'असर' सर्वे के उन आँकड़ों के आधार पर की जा रही है, जो यह दिखाते हैं कि इस अधिनियम के लागू होने के बाद से विद्यार्थियों के अधिगम स्तर में लगातार कमी आई है। अधिगम स्तर में कमी निश्चित रूप से चिन्ता का विषय है, जिस पर सरकार को ध्यान देना ही चाहिए क्योंकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा इस अधिनियम का एक अनिवार्य लक्ष्य है। राज्यों ने अधिगम स्तर में आई इस गिरावट के लिए अधिनियम में मौजूद 'फ़ेल न करने की नीति' (नो डिटेंशन पॉलिसी) को ही मुख्य रूप से ज़िम्मेदार माना। लगभग 25 राज्य सरकारों ने केन्द्र सरकार से इस नियम में तत्काल संशोधन करने की सिफ़ारिश की, जिसे सरकार ने मान भी लिया है और 'नो डिटेंशन पॉलिसी' को हटाकर उसके स्थान पर पुरानी प्रणाली अर्थात्

सबसे पहले तो, सरकार द्वारा नो डिटेंशन पॉलिसी को न्यून अधिगम स्तर के लिए ज़िम्मेदार मानना पूरी तरह अतार्किक है। यह स्पष्ट होना चाहिए कि नो डिटेंशन पॉलिसी अधिगम स्तर को बढ़ाने वाला कोई प्रावधान नहीं है। यह विद्यार्थियों में अवरोधन की समस्या को रोकने के लिए बनाई गई नीति है, जो कि अपने लक्ष्य में सफल भी है।

फ़ेल करने की नीति को लागू कर दिया है। लेकिन इन सभी राज्यों द्वारा इस नीति को खत्म किए जाने के पीछे दिया गया तर्क कि— 'नो डिटेंशन पॉलिसी विद्यार्थियों का बिना मूल्यांकन किए ही उन्हें अगली कक्षा में पदोन्नत करने का प्रावधान करती है, जिससे विद्यार्थी व शिक्षक सीखने-सिखाने के दबाव से मुक्त हो जाते हैं और अधिगम का स्तर निम्न ही रह जाता है'— इस नीति के बारे में राज्य की दोषपूर्ण समझ और खुद को व्यवस्थागत सुधारों के दायित्व से बचाने की मंशा को ही प्रदर्शित करता है। यह

निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है।

सबसे पहले तो, सरकार द्वारा नो डिटेंशन पॉलिसी को न्यून अधिगम स्तर के लिए ज़िम्मेदार मानना पूरी तरह अतार्किक है। यह स्पष्ट होना चाहिए कि नो डिटेंशन पॉलिसी अधिगम स्तर को बढ़ाने वाला कोई प्रावधान नहीं है। यह विद्यार्थियों में अवरोधन की समस्या को रोकने के लिए बनाई गई नीति है, जो कि अपने लक्ष्य में सफल भी है। साथ ही सरकार को यह भी ध्यान देना चाहिए कि अधिगम स्तर या विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने की जो आवश्यक पूर्व शर्तें हैं, वे व्यवस्था में निहित हैं और तय मानकों के अनुसार उनकी उपलब्धता सुनिश्चित कराना खुद सरकार का ही दायित्व है। यदि इस सम्बन्ध में सरकारी प्रयासों की ओर ध्यान दें तो मालूम होता है कि वे अपर्याप्त ही रहे हैं।

आँकड़े बताते हैं कि अभी भी लगभग 69,000 प्राथमिक विद्यालय एक कक्षीय हैं और आठ प्रतिशत विद्यालयों में केवल एक ही शिक्षक/शिक्षिका नियुक्त है। इसके अलावा 25.93 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात 30 से अधिक है। कुछ राज्यों, जैसे कि बिहार (65.92), उत्तर प्रदेश (57.70), दिल्ली (42.92) और झारखण्ड (41.29) में ऐसे विद्यालयों का प्रतिशत काफ़ी अधिक है। वहीं, 13.46 प्रतिशत उच्च प्राथमिक विद्यालय 35 से अधिक शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात वाले हैं।

शिक्षकों की कमी के अतिरिक्त सेवारत शिक्षकों/शिक्षिकाओं में आवश्यक न्यूनतम योग्यता का अभाव भी विद्यार्थियों के अधिगम के निम्न स्तर के लिए ज़िम्मेदार एक महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम में इस

समस्या की ओर विशेष ध्यान देते हुए सभी सेवारत शिक्षकों/शिक्षिकाओं के उचित प्रशिक्षण का कार्य पाँच वर्ष के अन्दर पूरा करने का लक्ष्य रखा गया था। अधिनियम के लागू होने के बाद, शुरू में इस काम के प्रति तेज़ी दिखाई गई और 2010-11 में 40.21 प्रतिशत शिक्षकों/शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण दिया गया। फिर, धीरे-धीरे सरकार ने इसकी ओर ध्यान देना कम किया और 2014-15 में 18.34 एवं 2015-16 में मात्र 14.90 शिक्षकों/शिक्षिकाओं को ही प्रशिक्षण दिया गया। हाल ही में सरकार ने खुद माना है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम में पाँच साल के अन्दर शिक्षकों को न्यूनतम योग्यता प्राप्त कराने का

पास-फ़ेल की परीक्षा प्रणाली को लागू करने के समर्थन में प्रयुक्त अवधारणा कि—‘बच्चे परीक्षा में पास होने के दबाव या फ़ेल होने के डर से सीखेंगे’— बिल्कुल निराधार है। अव्वल तो इसके पक्ष में कोई प्रमाण नहीं मिलता कि परीक्षा का डर या दबाव आवश्यक रूप से अधिगम सुनिश्चित करता ही है। बल्कि जापान, फ़िनलैण्ड जैसे विश्व के ऐसे कई देशों में प्रारम्भिक शिक्षा का स्तर बहुत अच्छा रहा है, जहाँ बहुत पहले ही पास-फ़ेल की व्यवस्था ख़त्म कर दी गई थी।

जो लक्ष्य रखा गया था, वह पूरा नहीं हो सका है। 2.5 लाख सरकारी शिक्षक अभी भी न्यूनतम योग्यता प्राप्त नहीं कर सके हैं और इसके लिए सरकार ने बाकायदा अधिनियम में संशोधन करके इस समय सीमा को 2019 तक बढ़ा दिया है। अतः जब यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा विद्यार्थियों का अधिगम सुनिश्चित कराने के लिए अधिनियम में दिए आवश्यक प्रावधान नहीं किए जा सके हैं— जिसकी पुष्टि विभिन्न विशेषज्ञ समितियों (केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की भुक्कल समिति, सुब्रह्मण्यम समिति और भारत के नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक) ने भी अपनी रिपोर्ट में की है— तो अधिगम में निम्न स्तर होने की सज़ा विद्यार्थियों को देना बेहद अन्यायपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त, फ़ेल न करने की नीति के खिलाफ़ दिया जाने वाला तर्क कि इसमें मूल्यांकन का प्रावधान नहीं है, इस नीति के प्रति अधूरी व दोषपूर्ण समझ का ही परिणाम है। इसकी मुख्य वजह है इसको सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के सन्दर्भ में न देखना,

जिसका प्रावधान आवश्यक रूप से 'नो डिटेंशन पॉलिसी' को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियम में किया गया है। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन, परम्परागत मूल्यांकन से भिन्न प्रणाली है जिसका उद्देश्य, कुछ विद्यार्थियों के चयन और कुछ के निष्कासन से अलग, सभी विद्यार्थियों की सीखने में मदद करना है। इसमें विद्यार्थियों की उपलब्धि को साल में किसी एक दिन न मापकर उनकी प्रगति की जाँच लगातार करनी है और तनाव मुक्त होकर सीखने में उनकी मदद करनी है। चूँकि यह नई प्रणाली है, जो शिक्षकों से नए क्रिस्म के कौशल की माँग करती है, इसके लिए अध्यापकों का प्रशिक्षण आवश्यक था। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के सन्दर्भ में नो डिटेंशन पॉलिसी की समीक्षा करने वाली केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की भुक्कल समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को लागू करने के लिए अध्यापकों का आवश्यक प्रशिक्षण कार्य पूरा नहीं हो सका है, और जो प्रशिक्षण दिया गया है वह भी अच्छे क्रिस्म का नहीं है। अधिकतर शिक्षक व शिक्षिकाएँ इस नीति के उद्देश्य को ठीक से समझते ही नहीं हैं, अतः इसे सही अर्थों में लागू ही नहीं किया जा सका है। समिति अपनी रिपोर्ट में शिक्षक पात्रता परीक्षा में भविष्य के शिक्षकों/शिक्षिकाओं के निम्न स्तरीय प्रदर्शन (2011 से शुरू हुई केन्द्रीय पात्रता परीक्षा में 2015 तक सफल होने वाले अभ्यर्थियों का प्रतिशत कभी 17 प्रतिशत से अधिक नहीं रहा है) का उदाहरण देते हुए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी गुणवत्ता की कमी का जिक्र करती है, और इस पर ध्यान दिए जाने का सुझाव भी देती है ताकि भविष्य में योग्य शिक्षकों की कमी न हो।

समेकन

पास-फ़ेल की परीक्षा प्रणाली को लागू करने के समर्थन में प्रयुक्त अवधारणा कि— 'बच्चे परीक्षा में पास होने के दबाव या फ़ेल

होने के डर से सीखेंगे'— बिलकुल निराधार है। अब्बल तो इसके पक्ष में कोई प्रमाण नहीं मिलता कि परीक्षा का डर या दबाव आवश्यक रूप से अधिगम सुनिश्चित करता ही है। बल्कि जापान, फ़िनलैण्ड जैसे विश्व के ऐसे कई देशों में प्रारम्भिक शिक्षा का स्तर बहुत अच्छा रहा है, जहाँ बहुत पहले ही पास-फ़ेल की व्यवस्था ख़त्म कर दी गई थी। कई अध्ययन और आँकड़े फ़ेल करने के नकारात्मक प्रभावों, जैसे कि विद्यार्थियों में मानसिक अवसाद, निम्न आत्मबोध, निराशा और स्कूल छोड़ देने की प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं।

अतः, जब स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के निम्न अधिगम स्तर की वजह व्यवस्थागत कमियों में है, तो उसे दूर करने की बजाय उसकी सज़ा विद्यार्थियों को देना सरकार के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना व्यवहार का ही उदाहरण है, जो कि पहले भी मौजूद रहा है। सरकारें हमेशा समानता के लिए आवश्यक प्रभावी प्रयास करने से बचती रही हैं या ऐसा करने में असफल रही हैं। अधिगम के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ सुनिश्चित किए बिना फ़ेल किए जाने के निर्णय का सबसे अधिक दुष्प्रभाव वंचित वर्ग के विद्यार्थियों पर ही पड़ेगा। अच्छे अधिगम स्तर के लिए आवश्यक सुविधाओं का अभाव मुख्य रूप से सरकारी विद्यालयों में ही है, जहाँ सबसे अधिक वंचित व कमज़ोर वर्ग के विद्यार्थी नामांकित हैं। अतः फ़ेल होने व विद्यालय छोड़ देने की दर भी उन्हीं की सबसे अधिक होगी।

इस अधिनियम के आने से पहले जहाँ यह विद्यार्थी संख्यात्मक प्रसार के नाम पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित किए जा रहे थे, वहीं अब गुणवत्ता के नाम पर विद्यालय छोड़ने पर मजबूर होंगे। इस तरह एक बार फिर यह बच्चे शिक्षा के अधिकार से वंचित ही रह जाएँगे, जिसके तहत सभी बच्चों को अवरोधन मुक्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा अनिवार्य रूप से पाने का अधिकार है।

सन्दर्भ

एनुअल स्टेटस ऑफ़ एजुकेशन रिपोर्ट, 2013, असर सैण्टर, नई दिल्ली।

एनुअल स्टेटस ऑफ़ एजुकेशन रिपोर्ट, 2014, असर सैण्टर, नई दिल्ली।

मेहता, एसी (2016), *एलिमेंटरी एजुकेशन इन इण्डिया- प्रोग्रेस टुवर्ड्स यूईई*, एनालिटिकल रिपोर्ट, 2015-16, न्यूपा, नई दिल्ली।

मेहता, एसी (2014), *एलिमेंटरी एजुकेशन इन इण्डिया- प्रोग्रेस टुवर्ड्स यूईई*, एनालिटिकल रिपोर्ट, 2013-4, न्यूपा, नई दिल्ली।

सदगोपाल, ए (2000), 'शिक्षा में बदलाव का सवाल', ग्रन्थ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

RTE Act 2009, Government of India.

Implementation of RTE Act, 2009, Comptroller and Auditor General of India, July 21, 2017.

Kumar, R (2006), *The Crisis of Elementary Education in India*, Sage Publications, New Delhi.

Naik, JP;S, Nurullah (1974), *A Student's History of Education in India (1800-1973)*, Macmillan Company of India Ltd., Delhi.

Report of CBE Sub Committee on Assessment on Implementation of CCE and No Detention Provision, 2014. Ministry of Human Resource Development, Government of India.

Report of the Committee for Evolution of the New Education Policy, 2016, Ministry of Human Resource Development, Government of India.

The Right of Children to Free and Compulsory Education (Second Amendment) Rules, 2017, Government of India.

Business Line (2018, June 2), Center to scrap no-detention policy soon: Prakash Javdekar. Retrieved from <https://www.thehindubusinessline.com/news/education/centre-to-scrap-no-detention-policy-soon-prakash-javdekar/>

article24067173.ece

The Times of India (2017, August 5). 24 states look set to scrap no-detention policy in schools from 2018. Retrieved from <https://timesofindia.indiatimes.com/home/education/news/24-states-look-set-to-scrap-no-detention-policy-in-schools-from-2018/articleshow/59923135.cms>

<https://www.livemint.com/Education/iwUT3pamWXWjvZb5G6ZQ3O/Parliament-passes-bill-to-allow-RTE-teachers-time-till-2019.html>

<https://www.talentsprint.com/ctet/annual-applications-and-qualified-percentage.dpl>

दिव्या दुबे समाजशास्त्र और शिक्षाशास्त्र में परास्नातक है और वर्तमान में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में शोधरत हैं।

सम्पर्क : divyadubey436@gmail.com

प्रो. मधु कुशवाहा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के शिक्षा संकाय में पिछले 20 वर्षों से अध्यापनरत है इन्होंने शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ और शिक्षा के सामाजिक मुद्दों को अपने अध्यापन एवं शोध का विषय बनाया है।

सम्पर्क : mts.kushwaha@gmail.com